षष्ठम अध्याय

उपसंहार

षष्ठम अध्याय
उपसंहार

इस शोध प्रबंध 'उपशास्त्रीय विधा ठुमरी: एक लोकतात्विक अध्ययन' के अंतर्गत उपशास्त्रीय विधा ठुमरी के अंतर्गत समाविष्ट विविध गीतप्रकारों के सांगीतिक एवं साहित्यिक पक्षों का लोकतात्विक- लोक तत्वों के सन्दर्भ से अभ्यास किया गया है |

प्रथम अध्याय – विषय परिचय—में इस शोध प्रबंध के विषय ' उपशास्त्रीय विधा ठुमरी: एक लोकतात्विक अध्ययन' का परिचय दिया गया है | सर्वप्रथम भारतीय संगीत के विविध प्रकारों की चर्चा की है | प्रस्तुतीकरण के समय सांगीतिक व्याकरण और राग-तालादि के नियमों को किस सीमा तक पालन किया जाता है उसके आधार पर तीन वर्गों में स्थूल रूप से वर्गीकृत किया गया है : 1) शास्त्रीय संगीत 2) मुक्त संगीत 3) उपशास्त्रीय संगीत | उपशास्त्रीय संगीत को परिभाषित करते हुए कहा गया है कि इस वर्ग के संगीत प्रकारों में शास्त्रोक्त नियमों का पालन करने के साथ ही यथायोग्य स्थान पर भाव-प्रदर्शन एवं रसोत्पत्ति के हेतु नियमों में शिथिलता भी आ जाती है | 'ठुमरी' ऐसी ही एक उपशास्त्रीय विधा है जो कि श्रृंगार रस प्रधान एवं लोकप्रिय उपशास्त्रीय संगीत की विधा है | आधुनिक काल में इस विधा के अंतर्गत ठुमरी, दादरा, होली, चैती, कजरी, झूला जैसे गीत प्रकारों का समावेश किया जाता है | इस विधा के उद्गम और विकास में शास्त्रीय और लोक ऐसे दोनों तत्वों का योगदान रहा है | कुछ विद्वानों के ठुमरी के विषय में मत बताए गए हैं | ठुमरी का साधारण परिचय इस अध्याय के आरम्भ में दिया है | इसके पश्चात 'लोक' एवं 'लोक तत्व' को परिभाषित करते हुए भारतीय संगीत के सन्दर्भ में लोकसंगीत की चर्चा की गयी है और उसके आधार पर 'लोक तत्वों' को निर्धारित किया है | इस अध्याय के अंत में इस शोध कार्य के उद्देश्य और मर्यादाओं को स्पष्ट किया गया है |

द्वितीय अध्याय में ठुमरी विधा के उद्गम, विकास एवं वर्तमान स्थिति के विषय में चर्चा प्रस्तुत की गई है | विभिन्न विद्वानों ने इसके पूर्व संशोधन और अद्ययन के द्वारा ठुमरी के उद्गम के विषय में अपने अपने मत प्रतुत किये हैं | जिनमें से एक मत ठुमरी के मूल प्राचीन तथा पूर्व मध्यकालीन भारत के ललित श्रृंगारिक कैशिकी वृत्ति के गीतों में तथा एक मत ब्रज प्रदेश में विकसित हुए कृष्ण भक्ति के गीतों एवं देशी-लोक गीतों में बताता है | किन्तु लिखित प्रमाणों के अभाव में इन मतों तक केवल अनुमान से ही पहुंचा गया है | अत: शोधार्थी का यह मत

प्रस्तुत है कि इन गीत प्रकारों की ठुमरी गीतों के साथ लाक्षणिक समानताएँ पाए जाने पर ये ठुमरी प्रकार के पूर्वज रहे होंगे यह अनुमान हम कर सकते हैं | ठुमरी के अस्तित्व के ठोस प्रमाण ईसा की सोलहवीं शताब्दी से पहले नहीं हैं एवं एक विशिष्ट वेश्या संगीत प्रकार के रूप में इसके प्रमाण केवल सत्रहवी शताब्दी के बाद ही हैं | अवध के राज दरबार में प्रवेश के बाद अर्थात ईसा की अठारवीं शताब्दी से इसको विशिष्ट नृत्य गीत के रूप में देखा गया, कत्थक के कलाकारों एवं व्यावसायिक तवायफों द्वारा इसका खूब पुरस्करण हुआ | अठारवीं शताब्दी के अंत से उन्नीसवीं शताब्दी में इसका नृत्य से भिन्न स्वतंत्र गान विधा बनने की ओर प्रवास चल पड़ा | बीसवीं शताब्दी आते-आते बनारस घराने की प्रसिद्ध प्रतिभाशाली तवायफों के साथ साथ कई ख्याल गायक, वाद्य के कलाकार आदि ने भी इस विधा को मंच पर प्रस्तुत करना प्रारंभ किया | बीसवीं शताब्दी में भारत देश को स्वतंत्रता मिलने के बाद धीरे धीरे तवायफों का अस्त होता गया और उनके स्थान पर तवायफ परंपरा से भिन्न स्त्री कलाकारों ने मंच प्रदर्शन में ठुमरी को प्रस्तुत करना प्रारंभ किया और | इस प्रवाह में बनारस घराने के कलाकारों का बड़ा योगदान रहा | इस पूरी विकास की प्रक्रिया में ठुमरी के बोल-विस्तार की क्रिया में भी परिवर्तन हुए और पहले केवल बोल-बाँट से युक्त मध्य लय की ठुमरियाँ प्रचलित थीं उनके स्थान पर बोल-बनाव युक्त धीमी लय की ठुमरियाँ प्रचलित हुईं | मध्य एवं द्रुत लय का निर्वाह दादरा प्रकार एवं लोक-संगीत के प्रकारों के द्वारा होने लगा | इस प्रकार ठुमरी विधा में बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में बड़े परिवर्तन हुए और सुविकसित बनारस घराने की 'बोल-बनाव' की ठुमरी, मध्य लय की ठुमरी, दादरा, होली, कजरी, झूला, चैती ये प्रकार सम्मिलित होते गए, इज्नकी गायकी को 'पूरब अंग' भी जाना गया | दूसरी ओर, पटियाला घराने के अली बख्श खाँ के बेटे उ. बड़े ग़ुलाम अली खाँ और उ. बरकत अली खाँ ने पूरब अंग ठुमरी को ही कुछ अपनी गायकी की विशेषताओं के साथ नई पद्धति से प्रस्तुत किया जो कि बहुत लोकप्रिय हुआ | संगीत जगत में ठुमरी गायकी के इस अंग को 'पंजाब अंग' के नाम से जाना गया | वर्तमान समय में ठुमरी विधा का गायन इन दोनों अंग से विविध कलाकार कर रहें हैं |

तृतीय अध्याय में, वर्तमान समय में ठुमरी विधा के अंतर्गत जो उत्तर भारतीय लोक संगीत के गीत प्रकारों का समावेश किया जाता है, उनका अभ्यास प्रस्तुत किया है | इनमें मुख्य रूप से होली, कजरी, चैती, झूला इन का समावेश किया जाता है | इनके अध्ययन पर पता चलता है कि इनकी प्रस्तुति ठुमरी के कलाकार जब ठुमरी विधा के अंतर्गत प्रस्तुत करते हैं तब इनकी शैली लोकसंगीत जैसी न रहकर ठुमरी के सदृश हो जाती है | यद्यपि इनके लोक संगीत के घने सम्बन्ध के कारण अधिक विस्तार का अवसर प्राप्त नहीं होता फिर भी कुछ प्रमाण में बोल-बनाव, बोल-बाँट आदि का उपयोग किया जाता है | इनके प्रस्तुतीकरण की लय कभी भी विलंबित या

मध्य-विलंबित पाई नहीं गई | भाषा भी लोक भाषाओं से ही आई हुई और रचनाओं का साहित्य भी बिना परिवर्तन के समाविष्ट होता है |

चतुर्थ अध्याय में, ठुमरी विधा में राग और ताल की स्थिति के विषय में चर्चा की है | शोधार्थी ने उपलब्ध ठुमरी की पुस्तकों में से ठुमरी की रचनाओं का संग्रह किया है , जिसकी सूची इस प्रबंध में दी है | उसी प्रकार शोधार्थी ने विविध गायक कलाकारों द्वारा ठुमरी के प्रस्तुतीकरण के रिकॉर्डिंग्स भी संग्रह किये हैं जिनकी सूची भी इस प्रबंध में दी है | इनके आधार पर शोधार्थी द्वारा किस राग में कितनी रचनाएँ हैं इनकी सारणा की है | इससे ठुमरी की विधा में किन रागों का प्रभुत्व है यह बात स्पष्ट होती है | यह तारण आता है कि **प्रकाशित रचनाएँ राग खमाज तथा उसके मिश्र रूप, राग काफी और मिश्र रूप तथा राग भैरवी और उसके मिश्र रूप में सबसे अधिक प्राप्त हैं |** ठुमरी के प्रस्तुतीकरण के रिकॉर्डिंग्स के आधार पर जो सारणा की है उससे यह तारण निकलता है कि **राग भैरवी और मिश्र रूप, राग खमाज और उसके मिश्र रूप तथा राग पीलू और उसके मिश्र रूपों में प्रस्तुतीकरण अधिक लोकप्रिय है |** तालों के विषय में यह कहा जा सकता है की **प्रकाशित साहित्य में सबसे अधिक रचनाएँ त्रिताल के विविध रूपों में और उसके बाद दीपचंदी तथा दादरा में उपलब्ध है | प्रस्तुतीकरण के समय सबसे अधिक प्रमाण दादरा तथा कहरवा तालों में बंधी रचनाओं का होता है | विलंबित रचनाओं के लिए त्रिताल से अधिक जत ताल का प्रमाण रहा है |**

पंचम अध्याय में शोधार्थी द्वारा ठुमरी के गीतों के साहित्य का अध्ययन किया है | इसके भाषा और विषय वस्तु ऐसे दो आयामों का अध्ययन किया है | इस अध्याय में यह स्पष्ट होता है कि **ठुमरी के गीतों की भाषा मुख्य रूप से ब्रज भाषा तथा अवधी, भोजपुरी, खड़ी बोली आदि के विभिन्न रूपों में पाई जाती है | इसमें समय के साथ कोई अधिक परिवर्तन नहीं आया | विषय वस्तु में सामान्य नायिका के मन के भाव सबसे अधिक प्रमाण में पाए जाते हैं | अन्य प्रचुर मात्रा में दिखनेवाला विषय है श्रीकृष्ण | लगभग सभी रचनाएँ संयोग अथवा वियोग श्रृंगार के रस को ही परिपोषित करती हैं |**

उपरोक्त पांच अध्यायों में से तीन अध्यायों में शोधार्थी द्वारा ठुमरी विधा के अंतर्गत राग, ताल तथा उसके साहित्य का एवं ठुमरी में समाविष्ट लोक संगीत के प्रकारों का अध्ययन किया गया है | उनसे यह स्पष्ट होता दिखाई देता है कि जहाँ तक

1) स्वर-रचना में सरलता एवं/ अथवा सहजता |

2) राग-नियमों की शिथिलता या अभाव |

3) प्राथमिक एवं मर्यादित ताल व्यवस्था |

4) मध्य और द्रुत लय का निर्वाह |

5) लोक-साहित्य की भाषा एवं लोक-जीवन से सम्बंधित विषय |

इन लोक तत्वों का सम्बन्ध है ठुमरी विधा इन का निर्वाह अपने उद्गम से लेकर वर्तमान समय तक करती आ रही है और इनकी स्थिति समय के साथ परिवर्तित होती आई है | इनमें से क्र. (1) और (2) के विषय में यह स्थिति है कि ठुमरी की रचनाएँ लोक गीतों के सापेक्ष अति सरल या सहज नहीं होतीं, कुछ प्रमाण की जटिलता और उच्च कला तत्व इस की रचनाओं में मौजूद हैं | प्रस्तुति के सौन्दर्य भाव में यह वृद्धि ही करते हैं | राग नियमों की शिथिलता का आशय भी भाव प्रदर्शन के लिए अधिकतम अवकाश और सौन्दर्य वृद्धि हैं | तभी तो यह एक उच्च और उपशास्त्रीय श्रेणी की कला का स्थान आज के युग में पा चुकी है और इसे भली भाँती निभाना एक कलाकार के लिए चुनौती बन सकती है |

क्रमांक 3) और 4) के विषय में स्थिति यह है कि ठुमरी के अंतर्गत उपयुक्त ताल व्यवस्था कतई प्राथमिक या मर्यादित नहीं है और उपयुक्त तालों की खाली-भरी आदि चीज़ों का ध्यान सम्पूर्ण प्रस्तुति के दौरान रहता ही है | हाँ, यह जरूर है कि अधिक क्लिष्ट तालों का उपयोग लगभग ना के बराबर है, कुछ पुरानी ठुमरी की किताबों में ऐसे ताल दिखते हैं किन्तु वर्तमान समय में कोई उनका उपयोग करता देखने को नहीं मिलता | विलंबित लय को प्रस्तुतीकरण में मध्य एवं द्रुत लय से कम प्रमाण मिलता हो फिर भी विलंबित लय की ठुमरियाँ बड़ी प्रसिद्ध हैं और परंपरागत कलाकार इसमें जरूर प्रस्तुति करते हैं | ठुमरी की प्रस्तुति के अंत भाग में प्रस्तुत दून एवं लग्गी का भाग उसके लोक तत्वों के प्रबल प्रभाव का परिणाम माना जाता है |

क्रमांक 5) में उल्लेखित लोक तत्व का ठुमरी की विधा में पूर्ण रूप से निर्वाह होता दिखता है | इसमें भाषा पर कहीं भी परिष्कृत नागरी हिंदी का उपयोग नहीं दिखता एवं विषय वस्तु में भी सामान्य लोकजीवन के विषय जैसे कि नर-नारी के मन में रहे प्रेम, विरह, आनंद, दुःख तथा श्रीकृष्ण इनका ही वर्णन मिलता है | त्योहारों और ऋतूओं के परिवेश को लेकर भी इन्हीं विषयों का वर्णन होता है | इस लिए **शोधार्थी का यह मत बना है कि ठुमरी विधा के स्वर-पक्ष, ताल-पक्ष और साहित्य-पक्ष में वर्तमान समय के सन्दर्भ में साहित्य-पक्ष में लोक-तत्व का निर्वाह सर्वाधिक हो रहा है , क्योंकि ठुमरी के विकास क्रम के दौरान यह पक्ष सबसे कम परिवर्तित आयाम रहा है | जैसे जैसे ठुमरी स्वतंत्र गान-विधा के रूप में स्थापित हो गई और वर्तमान में उसे अति उच्च, भाव-रसपूर्ण एवं चुनौतीपूर्ण कला का स्थान प्राप्त हुआ है तो उसी प्रमाण में साहजिक रूप से उसके सांगीतिक कला पक्ष के दो (स्वर और ताल) आयामों में भी परिवर्तन और परिष्करण होते गए हैं | इतना होते हुए भी ठुमरी अभी भी अपने लोक मूल को पकडे हुए है क्योंकि यह उसके विकास क्रम का अभिन्न अंग है और लोक संगीत की धारा से भी उसका सिंचन हुआ है | इस लिए शोधार्थी का यह मत बना है कि ठुमरी विधा की अपनी विशिष्ट पहचान का एक महत्वपूर्ण हिस्सा इसके लोक मूल अर्थात इसमें निहित लोक तत्व हैं | अपने विकास के क्रम में**

यह विधा समय की आवश्यकतानुसार अपने आपको ढालने में सफल रही है और शास्त्रीय तत्व एवं लोक तत्वों का प्रमाण समयानुसार बदलता रहा है | वर्तमान समय में ठुमरी के स्वर-पक्ष एवं ताल-पक्ष विलंबित प्रस्तुतियों में संगीत के शास्त्रीय तत्वों को अधिक लिए चलते हैं जब कि मध्य एवं द्रुत प्रस्तुतियों में लोक तत्वों का अस्तित्व अधिक दृष्टिगोचर होता है | ठुमरी के साहित्य पक्ष में लोक तत्वों का ही आधिक्य दृष्टिगोचर होता है |

****